National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015; 1(3): 25-32
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 11-12-2015
Accepted: 12-12-2015

डॉ० कपिल गौत्तम,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
मानविकी एवं समाजविज्ञान विद्यापीठ,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान 324010

Correspondence:
डॉ० कपिल गौत्तम,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
मानविकी एवं समाजविज्ञान विद्यापीठ,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान 324010

आचार्य शङ्कर कृत ब्रह्मसूत्र-अध्यासभाष्य : एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ० कपिल गौत्तम

प्रबन्धसार (Abstract)

भारतीय मनीषियों के ज्ञानविज्ञान की आधारशीला वेद है। वेद ही समस्तविधाओं का मूल है। वेद के पश्चात् भारतीयज्ञानपरम्परा में प्रस्थानत्रयी ने प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया है –

१.श्रुतिप्रस्थान- उपनिषद्
२.स्मृतिप्रस्थान – श्रीमद्भगवद्गीता
३.न्यायप्रस्थान – ब्रह्मसूत्र

आचार्य शंकर ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य कर अद्वैतवेदान्त की स्थापना की। अद्वैत वेदान्त में एकमात्र ब्रह्मन् या आत्मन् की सत्ता मानी है क्यों की वही एकमात्र त्रिकालाबाधित है । वह एक ,चेतन, साक्षी, सर्वव्यापी है–

" *एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।*
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च " ॥[1]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह एक, चेतन, साक्षी और निर्गुण आत्मा या ब्रह्म [2] , अनेक सगुण जीवों, जड पदार्थों में कैसे भासित होता है तथा इस जगत् में कर्ता और भोक्ता के रूप में व्यव्हार करने वाले जीव की उपपत्ति कैसे होती है ? इस प्रमुख तत्त्वमीमांसीय समस्या के समाधान हेतु आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने से पूर्व उपोद्धातरूप में अध्यासभाष्य का उपवर्णन किया तथा एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते है कि किस प्रकार एक, चेतन, ब्रह्म या आत्मन् का अनेक अनात्म पदार्थों में भासित होने का कारण अस्मद्-युष्मद् प्रत्यय या सत्यानृत का मिथुनीकरणरूप अध्यास/अज्ञान/अविद्या [3] है जिसके कारण जीव अपने आप को ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता मानने लगता है । प्रस्तुत शोधपत्र में अध्यासभाष्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जो मानवीय व्यवहार का मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है किस प्रकार आत्मन् शुद्ध चैतन्य होकर भी जगत् में प्रमाणप्रमेयव्यवहार का कर्ता जीव बन जाता है ।

मूल शब्द (Key Words) – आत्मन्, अनात्मन्, अध्यास, मिथ्या, सदसदविलक्षण, प्रातिभासिक, चिदात्मा, अस्मद्प्रत्ययगोचर, युष्मद्प्रत्ययगोचर |

---

1 श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस,गोरखपुर ,वि०सं० २०६६.

2 " आत्मा च ब्रह्म" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०८८,२००४.

3 तमेतमेवंलक्षणमद्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते ।" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, वही,५२

भूमिका (Introduction) -

शंकराचार्य ने अध्यासभाष्य में अध्यास का विवेचन करते हुए दर्शन की मूलभूत समस्या भ्रम की समस्या का आनुभाविक एवं व्यावहारिक विश्लेषण किया है। आचार्य का कहना है कि समस्त लोकव्यव्हार दो तत्त्वों के तादात्म्य या मिलन पर आधारित है- एक तो शुद्ध चैतन्य आत्मन् तत्त्व जो अहंप्रत्ययगोचर ,विषयी, चेतन, नित्य है, दूसरा अनात्म (देह, इन्द्रिय,अन्तःकरण् आदि) जो युष्मद्प्रत्ययगोचर विषय, जड, अनित्य है। यह युक्तियुक्त है कि विषयी आत्मन् तथा विषय अनात्म जो कि अन्धकार एवं प्रकाश की तरह परस्पर भिन्न स्वभाव वाले हैं ,इनका कदाचिदपि तादात्म्य सम्भव नही है – *युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः विषयविषयिणोः तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोः इतरेतरभावानुपपत्तौ सिद्दायां तद्धर्माणामपि सुतराम् इतरेतरभावानुपपत्तिः।*[4]

जब आत्म और अनात्म का तादात्म्य सम्बन्ध असम्भव है तब उनके परस्पर धर्मों का अध्यास भी नही हो सकता अतः यह मिथ्या[5] है परन्तु इनके तादात्म्य सम्बन्ध के बिना कर्तृत्व भोक्तृत्वादि गुणविशिष्ट जीव की उपपत्ति नही होगी यदि जीव की उपपत्ति न हो तो लोकव्यव्हार कैसे बनेगा ? यह लोकव्यहार अध्यास नामक प्रकिया का परिणाम है जो माया/ अविद्या/अज्ञान का व्यापार है अध्यासं अविद्या कार्यत्वात् अविद्या इति मन्यन्ते ।[6] यह अविद्या या माया बीजशक्ति है, विराट समष्टि की भ्रान्ति , अव्यक्त है, सदसद्विलक्षण, परमेश्वराश्रया जिसमें स्वरूपज्ञानरूपी प्रतिबोध (जागरण) से रहित जीव सो रहे हैं – *अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तपदनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्तिः यस्यां स्वरूपबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवाः। तदेतदव्यक्तं क्वचिदाकाशशब्दनिर्दिष्टम्* " *एतस्मिन्नु गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च (बृ०उ०३/८/११) क्वचिदक्षरशब्द* " *अक्षरात्परतः परः (मु०उ० २/१/२),क्वचिन्मायेति सूचितम्* -- " *माया तु प्रकृतिं विद्यात्*" *(श्वे०उ० ४/१०) अव्यक्ता हि सा माया तत्त्वान्यत्वनिरूपणस्य अशक्यत्वात् ॥*[7]

अज्ञान कृत अध्यास को भगवद्गीता मे जीवों को मोहित करने के रूप में वर्णित किया है –

" *नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः*
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः " ॥

इसी पर शंकर भाष्य करते हुए लिखते है-

" *अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं विवेकविज्ञानं तेन मुह्यन्ति करोमि कारयामि भोक्ष्ये भोजयामि इति एवं मोहं गच्छन्ति अविवेकिनः संसारिणो जन्तवः ॥*[8]

---

[4] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०१०,२००४.

[5] सदसदविलक्षणत्वं मिथ्यात्वं- तत्त्वप्रदीपिका सम्पा०, योगीन्द्रानन्द, षडदर्शनप्रकाशन प्रतिष्ठान वाराणसी,*1974.*

[6] रत्नप्रभा, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०५२,२००४.

[7] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, १।४।३ ,वही.

[8] भगवद्गीताशांकरभाष्य ५/१५, गीताप्रेस गोरखपुर,पृ०१५९,सं २०६६

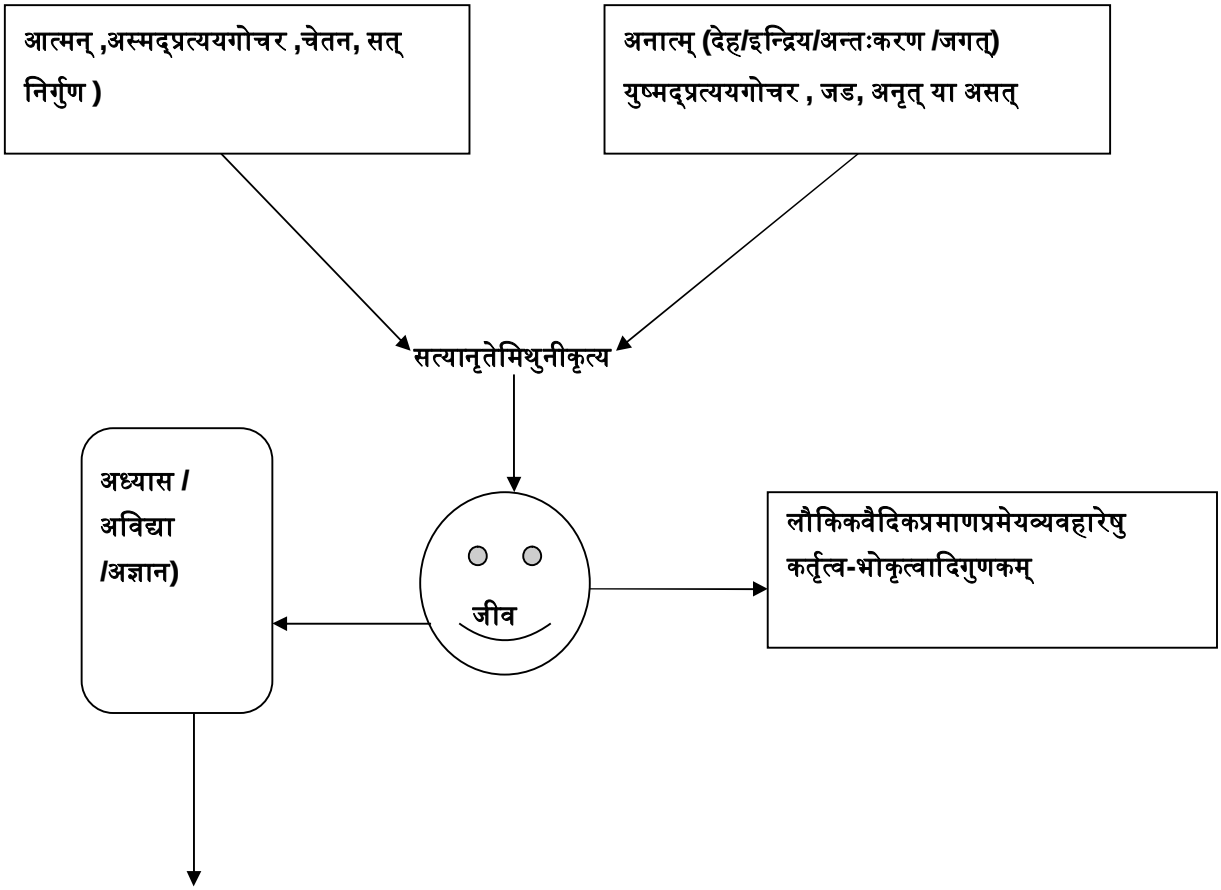

अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते । [9]

अध्यास का लक्षण

ऊपर निर्देशित मानवीय व्यव्हार के अनुरूप ही आचार्य शंकर अध्यास के तीन प्रधान लक्षण अध्यासभाष्य मे देते है-

१. स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः अर्थात् जो स्मृतिरूप तथा पूर्वदृष्ट सर्प या अनात्म (देह/इन्द्रिय/अन्तःकरण/जगत् युष्मद्प्रत्ययगोचर / जड, अनृत् या असत्) का परत्र अर्थात् रज्जु या आत्मन् (अस्मद्प्रत्ययगोचर ,चेतन, सत् निर्गुण) में जो अवभास है वह अध्यास है। अवभास से आशय अव- बाधित + भास- ज्ञान अर्थात् यह ज्ञान कालान्तर में रज्जुज्ञान या आत्मज्ञान से बाधित हो जाता है ।
२. *अन्यस्य अन्यधर्मविभासता* अर्थात् अन्य का (सर्प या अनात्म) का अन्य में (रज्जु या अनात्म) में बाधित ज्ञान अध्यास है ।

[9] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,उपोद्घात,पृ० ५९, वह

३. अतस्मिन् तदबुद्धिः अर्थात् जो वह नही है (सर्प या अनात्म, रज्जु या आत्म नही है तथापि रज्जु या आत्मन् में सर्प तथा अनात्म वाला ज्ञान अध्यास है। अध्यास के इन तीनों लक्षणों को निम्न रेखाचित्र द्वारा सहजता से समझा जा सकता है

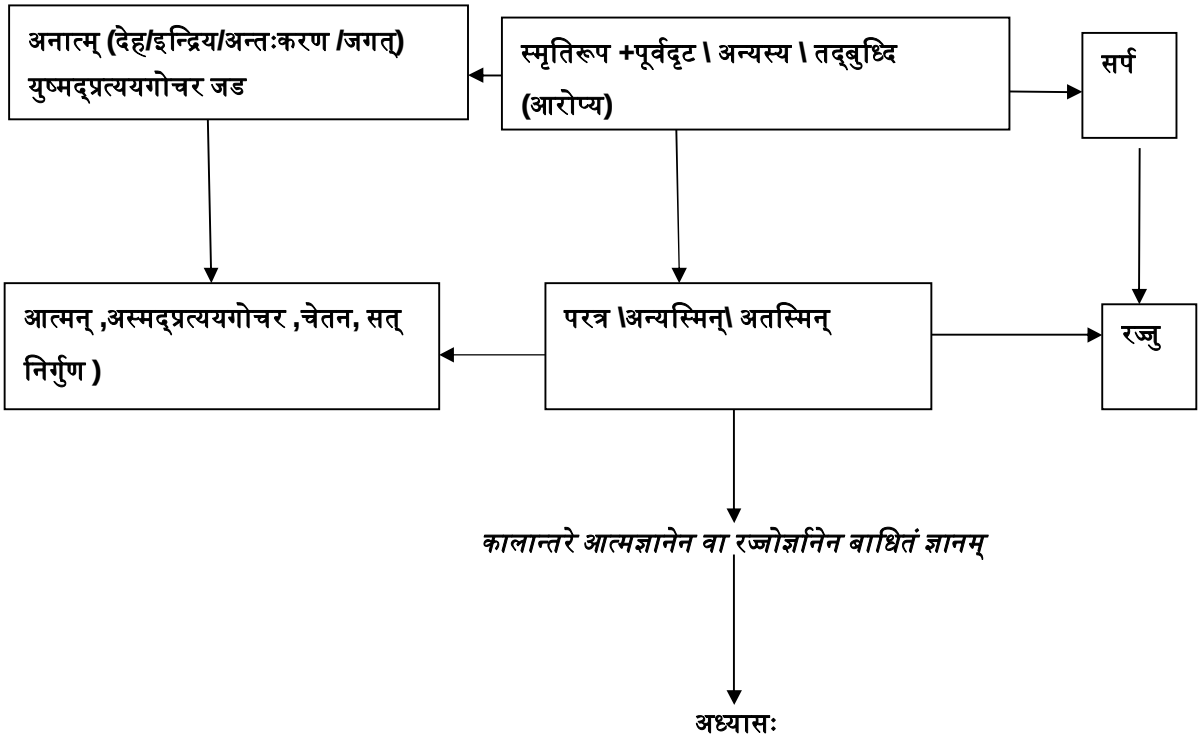

अध्यास के प्रकार

" *अहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यहारः* "[10] पर टीका करते हुए भामतीकार वाचस्पति मिश्र का मत है कि यहाँ शंकर दो प्रकार के अध्यास के भेदों की चर्चा करते है -१. अहंकाराध्यास- इसमें पहले आत्मन् का सभी बाह्य वस्तुओं देह,इन्द्रिय,अन्तःकरण, अहं कहकर अध्यास या भ्रम होता है मैं स्थूल हुँ, मैं कृश हुँ इस प्रकार का ज्ञान होता है।

इसके पश्चात् मेरा यह शरीर ममेदं शरीरं इस प्रकार का ज्ञान होता है जिससे अन्तःकरण अहमकार वृत्ति चैतन्य या ज्ञानस्वरूप है जिसे ममकाराध्यास कहते है।

यद्यपि रत्नप्रभाकार (गोविन्दाचार्य) ने अद्यास के पाँच भेद बताये है परन्तु इन सभी का अन्तर्भाव उपर्युक्त तीनों भेदों मे हो जाता है – अर्थाध्यास, ज्ञानाध्यास, अन्योन्याध्यास, तादात्म्याद्यास, संसर्गाध्यास-

लोक्यते मनुष्यो अहमित्यभिमन्यते इति लोकोअर्थाध्यासः। तद्विषयो व्यवहारोऽभिमान इति ज्ञानाध्यासो दर्शित॥ बाह्य चैतन्यादि धर्माणां धर्मिणो अहंकारात्मनो । तथोरत्यन्तमिन्मयो इतरेतरभेदाग्रहेण अन्यो स्मिन् अन्योन्यतादात्म्यान्योन्यधर्माध्र वयत्यासेन अन्योन्यस्मिन् लोकव्यव्हारः ॥[11]

---

[10] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, उपोद्घात,पृ०२३. वही।

[11] रत्नप्रभा, पृ० २७. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४.

अध्यास की सत्ता की सिद्धि

यद्यपि शंकरपूर्वदर्शनों में भ्रम को अत्यन्त असत् माना है परन्तु शंकर ने भ्रम के स्थान पर अध्यास शब्द का प्रयोग किया है और उसे मिथ्या या सदसदविलक्षण माना है जो अत्यन्त असत् न होकर प्रातिभासिक सत्ता वाला है। शंकराचार्य ने इस प्रकार की आपत्तियों को पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थित करके उनका समुचित समाधान किया है। पूर्वपक्ष का आक्षेप है कि असत् अज्ञान या अध्यास सत् ब्रह्म का व्यावहारिक रूप में कैसे भास करा सकता है ? अतः जगत्, जीव, शास्त्र के असत् होने पर मोक्ष भी असत् हो जायेगा और उसका प्रतिपादन करने वाला अद्वैत वेदान्त भी असत्य हो जायेगा। अनृत वेदान्त शास्त्र के माध्यम से प्रतिपादित जीवब्रह्मैक्य भी असत्य हो जायेगा । अतः असत्य वेदान्तवाक्यों से सत्य ब्रह्म की प्राप्ति नही हो सकती – *कथं चानृतेन मोक्षशास्त्रेण प्रतिपादितस्य आत्मैकत्वस्य सत्यत्वमुपपद्येत ? कथं तु असत्यत्वेन वेदान्तवाक्येन सत्यस्य ब्रह्मात्मस्य प्रतिपत्तिरूत्पद्द्येत* ?[12] अतः अध्यास असत् है क्योकि असत् प्रयासों से कभी सत् की प्राप्ति नही हो सकती न कभी असत् वस्तु(अध्यास) में अर्थक्रियासामर्थ्य अर्थात् कार्य उत्पन्न करने कि क्षमता होता है क्यों कि क्या कभी किसी ने कही भी रज्जु सर्प को काटे हुए को मरते हुए देखा है ? या कभी किसी ने कही भी मृगमरिचिका से प्यास बुझाई या स्नान किया है ? " *न हि रज्जु सर्पेण दष्टो म्रियते। नापि मृगतृष्णिकाम्भसा पानावगाहनादिप्रयोजनं क्रियते* " ।[13]

प्रतिभास क्षीण अस्पष्ट और अल्पकालिक होता है जबकि व्यव्हार तीव्र, स्पष्ट, दीर्घकालिक होता है। प्रतिभास का मिथ्यात्व व्यव्हार से होता है और व्यवहार का मिथ्यात्व पारमार्थिक ब्रह्मात्मकता के अनुभव से होता है इसके पूर्व नहीं। रज्जुसर्प का मिथ्यात्व भ्रमनिवृत्ति के बाद तथा स्वप्न आदि मिथ्यात्व जाग्रत अवस्था में आने पर होता है उसी प्रकार जगत् प्रपंच का मिथ्यात्व भी जीवब्रह्मैक्य के ज्ञान से होता है जीवब्रह्मैक्य के ज्ञान से पूर्व समस्त स्वप्नादि प्रपंच तथा लौकिक वैदिक व्यव्हार अव्याहत रूप से चलता रहता है – " *सर्वव्यवहाराणामेव प्रागब्रह्मात्मताविज्ञानात् सत्यत्वोपपतेः स्वपनव्यवहारस्येव प्राक् प्रबोधात्।प्रागब्रह्मात्मताप्रबोधात् उपपन्नः सर्वो लौकिको वैदिकश्च व्यव्हारः।*[14] दूसरा प्रतिपक्षी का जो कथन है कि प्रतिभास पदार्थ अर्थक्रियासमर्थ नही है तो वह असत्य है व्यव्हार तथा प्रतिभास अपने अपने स्तर पर अर्थक्रिया समर्थ है रज्जुसर्प भ्रमदशा में भ्रान्त व्यक्ति को भयभीत बना देता है, वह व्यक्ति स्वयं को सर्पदष्ट समझकर भ्रान्त दशा मे मरणासन्न मान सकता है, यदि रज्जुसर्प पर पैर पडते समय वहाँ कोइ नुकीला पत्थर हो या कील पाँव में छेद करके रक्त निकाल दे, तो सर्पविशप्रवेश की शंका से हृदयगति भी रुक सकती है। स्वप्न जल से स्वप्न की तृषा आनन्द से तृप्त होती है। स्वप्न दृष्ट सिंह की गर्जना से या अन्य भयावह स्वप्न से नींद खुल जाती है और भय कम्प, रोमांच की अनुगूँज जाग्रत अवस्था में भी कुछ देरी तक चलती रहती है।

चिदात्मा पर अध्यास की सम्भावना

शुद्ध चैतन्य आत्मन् पर अचेतन अनात्म (देह /इन्द्रिय /अन्तःकरण /जगत्) युष्मद्प्रत्ययगोचर , जड, अनृत् या असत् का अध्यास करने से ही लौकिक व्यव्हार सम्पादित होता है । लौकिक व्यव्हार ही नही वरन् शास्त्रीय व्यव्हार भी अध्यासमूलक है क्योकि शास्त्र में जब बुद्धिमान् मनुष्य प्रवृत्त है, तब वह आत्मा का परलोक में अस्तित्व मानकर ही

---

[12] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, २/१/१४,पृ०३४ वही।.

[13] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, २/१/१४,पृ ४३ वही ।

[14] बृह्मसूत्रशांकरभाष्य, २/१/१४,पृ ४३ वही

प्रवृत्त होता है और ऐसी स्थिति में देह से आत्मा भिन्न है यह ज्ञान उसको रहता है किन्तु ऐसा होने पर भी वेदान्तवेद्य क्षुधा, पिपासा आदि के साथ जिसका कोई सम्बन्ध नहीं तथा ब्राह्मण ,क्षत्रियादि भेद जिसमें नही है ऐसे असंसारी आत्मन् का ज्ञान शास्त्रीय कर्म में नहीं है । उदा० ब्राह्मणो यजेत आदि शास्त्रीय व्यव्हार वर्ण,आश्रम, वय, अवस्था आदि का आत्मन् में अध्यास करके ही प्रवृत्त होते है इसलिए यह अनादि, अनन्त, नसर्गिक, मिथ्याज्ञानस्वरूप और आत्मन् में कर्तृत्व भोक्तृत्वादि उत्पन्न करने करने वाला यह अध्यास सब लोगो के प्रत्यक्ष है

एवमयमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्याप्रत्ययरूपः कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रवर्तकः सर्वलोकप्रत्यक्षः । [15]

अब अध्यास पर पूर्ण चर्चा हो जाने पर अध्यास कैसे होता है ? कैसे जीव संसार में ज्ञाता कर्ता भोक्ता बनता है ? या किस प्रकार चेतन आत्मन् पर अचेतन अनात्म (*देह /इन्द्रिय /अन्तःकरण /जगत्*) का अध्यास होता है ? इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शंकर अध्यासभाष्य के अन्त में चार प्रकार से प्रस्तुत करते है –

- **बाह्य धर्मों का आत्मन् पर अध्यास**- पुत्र भार्या आदि के पूर्ण या अपूर्ण होने पर ही में पूर्ण या अपूर्ण हूँ। इस प्रकार बाह्य धर्मो का आत्मन् में अध्यास ।
- **देह धर्मों का आत्मन् पर अध्यास** – मैं मोटा हूँ , मैं कृश हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं जाता हूँ, मैं लाँघता हूँ इन शरीर के धर्मों का आत्मन् पर अध्यास ।
- **इन्द्रिय के धर्मो का आत्मन् पर अध्यास** -– मैं मूक हूँ , मैं अन्धा हूँ, मैं बधिर हूँ, मैं काना हूँ, मैं नपुंसक हूँ इत्यादि इन्द्रिय के धर्मो का आत्मन् पर अध्यास ।
- **अन्तःकरण के धर्मों का आत्मन् पर अध्यास** – अद्वैत वेदान्त में अन्तःकरण को चार रूपों मे माना गया है –

i. *मन- संकल्पविकल्पात्मिका अन्तःकरणवृत्तिः ।* [16]
ii. *बुध्दि- अध्यवसायात्मिका अन्तःकरण वृत्तिः ।* [17]
iii. *चित्त- अनुसंधानात्मिका अन्तःकरणवृत्तिः ।* [18]
iv. *अहंकार- अभिमानात्मिका अन्तःकरणवृत्ति ।* [19]

विवेकचुडामणि के अनुसार - " *निगद्यते अन्तःकरणं मनोधि-रहंकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः* "

मनस्तु संकल्पविकल्पनादिभिर्बुद्धि पदार्थाध्यवसाय धर्मतः
अत्राभिमानादहमित्यहकृतिः स्वार्थानुसंन्धानगुणेन चित्तम् ॥ [20]

---

15 ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, उपोद्घात्, ५६,पृ० वही।

16 वेदान्तसार,व्या० राकेशशास्त्री, पृ० १८५, परिमल पब्लिकेशन, २००४.

17 वेदान्तसार,व्या० राकेशशास्त्री, पृ० १८५, परिमल पब्लिकेशन २००४.

18 विवेकचूडामणि,अनु० मुनिलाल, पृ० २८, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं०, २०६५.

19 विवेकचूडामणि,अनु० मुनिलाल, पृ० २८, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं०, २०६५.

20 विवेकचूडामणि,अनु० मुनिलाल, पृ० २८, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं०, २०६५.

इस प्रकार इन अन्तःकरण के धर्मों का आत्मन पर अध्यास कर लौकिक व्यव्हारी जीव बनता है। आत्मन् पर अध्यास के प्रकार -

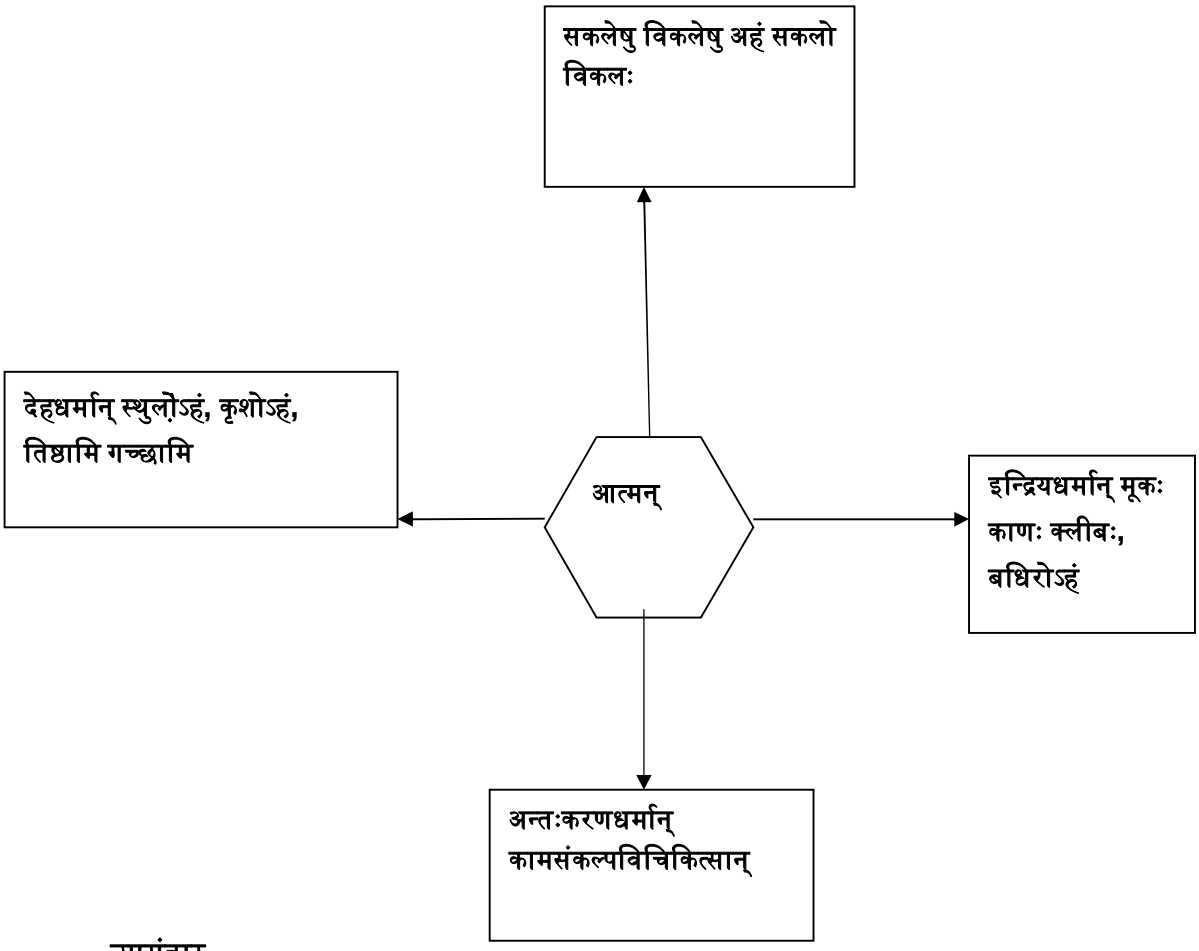

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अध्यासभाष्य मानवीय व्यव्हार का मनोवैज्ञानि विश्लेषण प्रस्तुत करता है जिसका न केवल पारमार्थिक अपितु इहलौकिक महत्व है। यही कारण है कि अध्यास-निवृत्ति वेदान्त का प्रयोजन स्वरूप है

" अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते" । [21]

अध्यासभाष्य के मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन से भारतीय परम्परा में मनोविज्ञान पर गहन चिन्तन परिलक्षित होता है। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सन् १९३८ के अधिवेशन में प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने विज्ञान की २५ वर्षों की प्रगति की समीक्षा करते हुए कहा कि – *" भारत के प्राचीन विद्वानों के अन्तर्दर्शन के द्वारा गमन की विशेष प्रतिभा थी। और इस दृष्टि से वह पश्चिम में अपने सहयोगी से अधिक अच्छी स्थिति रखता है। यदि इस शक्ति को उचित रूप बढाया जाये तो गहन अन्तर्दर्शन की आवश्यक्ता वाली समस्याओं जैसे विचार की प्रक्रियाओं, उच्चतर सांस्कृतिक सहज ज्ञान इत्यादि को सफलतापूर्वक सुलझाया जा सकेगा। सन्तों और योगियों का रहस्यवादी अनुभव मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान की विषय वस्तु होना चाहिये और भारतवर्ष इस प्रकार के अध्ययन के लिए सर्वोत्तम स्थान है"* [22]।

---

21 ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,उपोद्घात,पृ० ५९, वही

22 भारतीय मनोविज्ञान, रामनाथ शर्मा तथा रचना शर्मा, पृ० 5. एटलाण्टिक पब्लिशर्स, 2004.

सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची (References)

- श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस,गोरखपुर ,वि०सं० २०६६.
- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग,पृ०१०,२००४.
- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, सम्पा० कन्हैया लाल जोशी (भामती, कल्पतरु,परिमल,टीकाओं सहित),परिमल पब्लिकेशन्स,दिल्ली 1982.
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य (एकादशीटीका संयुतम्), सम्पा० योगेश्वरदत्त शर्मा, नाग प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1997.
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (चतुःसूत्री), संपा० रमाकान्त तिवारी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1991.
- ब्रह्मसूत्र-विद्योदयभाष्यम्, उदयवीर शास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, 2003.
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (सत्यानन्दी-दीपिकया-समलंकृतम्) व्या० स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2007.
- तत्त्वप्रदीपिका सम्पा०, योगीन्द्रानन्द, षडदर्शनप्रकाशन प्रतिष्ठान वाराणसी,1974.
- भगवद्गीताशांकरभाष्य ५/१५, गीताप्रेस गोरखपुर,पृ०१५९,सं २०६६
- वेदान्तसार,व्या० राकेशशास्त्री, पृ० १८५, परिमल पब्लिकेशन, २००४.
- विवेकचूडामणि,अनु० मुनिलाल, पृ० २८, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं०, २०६५
- अभेदानन्द, शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,1973.
- Principal Upanisads (Vol.1), (Eng. Trans. & comm.), Swami Sivananda, The Yoga Vedanta Forest University, Divine Life Society, Rishikesh, 1950.
- kar, Bijanand, Indian Theory Of Error, Sophia Indological series, No.3, Ajanta Book International, Delhi, 1990.
- Ramchandrana, T. P., The Concept of the Vy· vah· rika in Advaita Vedanta, University of Indore, 1980.